जनसत्ता

16 दिसंबर, 2019

विद्रोह का रुख

नागरिकता संशोधन विधेयक के संसद के दोनों सदनों में पारित हो जाने और राष्ट्रपति की भी स्वीकृति मिल जाने के बाद पूर्वोत्तर में विद्रोह की लपटें तेज हो गई हैं। विपक्षी दल तो शुरू से इस विधेयक का विरोध कर रहे थे, धीरे-धीरे राज्य सरकारों ने इसे लागू करने से मना करना शुरू कर दिया है। पहले पश्चिम बंगाल, पंजाब और केरल ने कह दिया था कि वे अपने यहां इस कानून को लागू नहीं करेंगे। अब मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र ने भी इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। मगर केंद्र सरकार कह रही है कि इस कानून को लागू करना उनकी संवैधानिक बाध्यता है। उधर कुछ लोगों ने अदालत में इस कानून को चुनौती दी है। सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आना है। इस कानून को लेकर बहुत सारे समाजसेवी, बुद्धिजीवी विरोध में खड़े हैं। सर्वोच्च न्यायालय के एक अवकाश प्राप्त न्यायाधीश ने भी इसके विरोध में हस्ताक्षर किया है। मगर सरकार का तर्क है कि यह कानून मुसलिम समुदाय के लोगों के विरोध में नहीं है, इसलिए उनकी सुरक्षा को लेकर चिंताएं निर्मूल हैं। मगर हकीकत यही है कि सरकार इस कानून को लेकर चौतरफा घिरी नजर आ रही है।

नागरिकता (संशोधन) विधेयक में, जो अब कानून का रूप ले चुका है, स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान में धार्मिक आधार पर प्रताड़ित हिंदू, सिख, बौद्ध, सिख, ईसाई और पारसी समुदाय के लोगों को नागरिकता प्रदान की जाएगी। इसमें मुसलिम समुदाय के लोगों को बाहर रखा गया है। फिर श्रीलंका में धर्म के आधार पर प्रताड़ित हिंदुओं को इसमें शामिल नहीं किया गया है। इसके अलावा रोहिंग्या और अहमदिया जैसे समुदाय के लोग भी धर्म के आधार पर प्रताड़ित हैं, उनकी कोई सुध नहीं ली गई है। इसी को लेकर विरोध हो रहा है। इस कानून को संविधान की मूल भावना के विरुद्ध बताया जा रहा है। संविधान नागरिकता के मामले में सेक्युलर व्यवस्था देता है, उसमें किसी भी समुदाय के प्रति धर्म के अधार पर भेदभाव को गैरकानूनी करार दिया गया है। फिर यह भी संकल्प है कि संविधान की इस भावना के विरुद्ध कोई भी बदलाव नहीं किया जा सकता। इसलिए कई लोग आशान्वित हैं कि सर्वोच्च न्यायालय इस कानून को अवैध करार दे देगा। इस पर अदालत का क्या रुख होता है, देखने की बात है। पर नागरिकों के विद्रोह से निपटना फिलहाल सरकार के लिए बड़ी चुनौती है।

पूर्वोत्तर में हिंदू और मुसलमान का मामला नहीं है। वहां कई जनजातीय समुदाय हैं, जो अपनी पहचान के लिए लंबे समय से संघर्ष करते रहे हैं। असम समझौते में वहां के जनजातीय समुदाय के नागरिकों की पहचान सुरक्षित रखने का प्रावधान किया गया। अब नागरिकता (संशोधन) कानून लागू होने से पुराने प्रावधान अप्रभावी हो जाएंगे। दूसरे प्रदेशों और देशों के लोगों को वहां जाकर बसने की गुंजाइश बनेगी। इससे पूर्वोत्तर के लोगों का जीवन प्रभावित होगा। हालांकि वहां सरकार ने इनर लाइन परमिट लागू किया है, यानी वहां वही जा सकता है, जिसे परमिट हासिल है, पर वह आंशिक रूप से ही प्रभावी है। इसी को लेकर वहां नाराजगी फट पड़ी है। कर्फ्यू के बावजूद हजारों की संख्या में लोग सड़कों पर उतर रहे हैं। यह गुस्सा धीरे-धीरे दूसरे राज्यों में भी फैल रहा है। ऐसे में सरकार के लिए इस कानून को लागू करवा पाना आसान नहीं होगा। उसे इस पर पुनर्विचार कर व्यावहारिक रूप देने की जरूरत है।

बोरिस की वापसी

ब्रिटेन के आम चुनाव में कंजर्वेटिव पार्टी को भारी बहुमत से जिता कर देश की जनता ने ब्रेक्जिट पर अपनी मुहर लगा दी है। बोरिस जॉनसन फिर से प्रधानमंत्री बन सत्ता में पहुंचे हैं और अब उनका पहला काम देश की जनता से किए अपने सबसे बड़े वादे यानी ब्रिटेन को यूरोपीय संघ से अलग करना है। तीन साल पहले ब्रेक्जिट को लेकर ब्रिटेन में हुए जनमत संग्रह में बावन फीसद लोगों ने इसके पक्ष में वोट डाले थे। लेकिन ब्रेक्जिट की यात्रा आसान नहीं रही। पिछले साल ब्रेक्जिट से अलग होने के तरीके को लेकर सरकार में ही विवाद गहरा गए थे और प्रधानमंत्री थेरेजा मे की सरकार से एक साथ तीन मंत्रियों ने इस्तीफा देकर राजनीतिक संकट खड़ा कर दिया था। अब बोरिस जॉनसन के सामने सबसे बड़ी चुनौती 31 जनवरी, 2020 तक ब्रिटेन को यूरोपीय संघ से अलग कर लेने की है। बोरिस जॉनसन ने इस साल मई में सत्ता संभाली थी और 31 अक्तूबर तक ब्रिटेन को यूरोपीय संघ से अलग कर लेने का वादा किया था, लेकिन हाउस ऑफ लार्ड्स (उच्च सदन) में प्रस्ताव गिर गया और यह कवायद नाकाम हो गई। इसके बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया था। ऐसे में अब बोरिस जॉनसन कैसे इस दिशा में आगे बढ़ते हैं, यह देखने की बात है।

ब्रिटेन में पिछले पांच साल में तीन बार चुनाव हुए हैं और देश ने चार प्रधानमंत्री देखे हैं। इन चुनावों का सबसे बड़ा मुद्दा ब्रेक्जिट ही रहा है। कंजर्वेटिव पार्टी पिछली बार के मुकाबले सैंतालीस सीटें ज्यादा जीत कर तीन सौ पैंसठ पर पहुंच गई है। इससे पहले 1987 में मार्गरेट थैचर के नेतृत्व में इस पार्टी को तीन सौ संतानबे सीटें मिली थीं। दूसरी ओर, लेबर पार्टी सहित जिन सात दलों ने दोबारा जनमत संग्रह कराने और ब्रेक्जिट रद्द करने का वादा किया था, उन्हें उन्हें दो सौ सत्तर सीटें ही मिलीं। जाहिर है, ब्रिटेन की जनता अब फैसला कर चुकी है कि उसे यूरोपीय संघ से अलग होना है और इसके लिए भले कितनी अड़चनें आएं, कितना वक्त लगे, इसकी चिंता नहीं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद यूरोपीय देशों के बीच व्यापार और आर्थिक सहयोग को लेकर ही यूरोपीय संघ बना था और ब्रिटेन इसमें 1975 में शामिल हुआ था, लेकिन तबसे उसकी इस संघ में कोई ज्यादा अहमियत नहीं रही। उसे यूरोपीय संघ की उन शर्तों को मानने के लिए मजबूर होना पड़ रहा था, जो ब्रिटेन के हितों के खिलाफ थीं। इसलिए अब ब्रिटेन की नई पीढ़ी देश को हर मामले में स्वतंत्र देखना चाहती है, चाहे व्यापार, रोजगार, आर्थिक हितों के मुद्दे हों या सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दे। यूरोपीय संघ से अलग होने पर सबसे बड़ा खतरा ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था और संघ के दूसरे देशों के साथ व्यापार को लेकर है। ऐसे में ब्रिटेन यूरोपीय संघ की शर्तों के आगे कितना झुक पाएगा, यह बड़ा सवाल है। हालांकि यूरोपीय संघ से पूरी तरह नाता तोड़ने के बाद देश को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा, उससे बोरिस जॉनसन भी अच्छी तरह समझ रहे हैं।

बोरिस जॉनसन का सत्ता में और ताकतवर होकर लौटना भारत के लिए भी अच्छा संकेत हैं। वे भारत के पक्के समर्थक रहे हैं। हाल के महीनों में ब्रिटेन के प्रमुख विपक्षी दल लेबर पार्टी ने जिस तरह से भारत विरोधी रवैया अख्तियार किया था, उससे भारत असहज महसूस कर रहा था। अब बोरिस जॉनसन के सत्ता में वापसी से भारत-ब्रिटेन के बीच हर तरह के व्यापक सहयोग के रास्ते बनने की उम्मीद बनी है।

कल्पमेधा

वह सभ्यता, जिसके पास आधुनिक तकनीकी ज्ञान नहीं है, कुछ नहीं कर सकती।
– एपीजे अब्दुल कलाम

संकट में ग्रामीण अर्थव्यवस्था

सुविज्ञा जैन

कृषि का योगदान भले ही कम हो, लेकिन आबादी के लिहाज से वह देश का सबसे बड़ा व्यवसाय आज भी है। देश की आधी आबादी कृषि से रोजगार पाती है। पर अब कृषि क्षेत्र उसमें लगे व्यक्तियों को अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरा करने लायक मुनाफा भी नहीं दे पा रहा है। जाहिर है, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बदहाली का असर देश के बाजार पर पड़ने लगा है।

पिछली छह तिमाहियों से देश की माली हालत चिंता में डाले हुए है। इस साल की दूसरी तिमाही में आर्थिक वृद्धि दर ने गिरते-गिरते पिछली छब्बीस तिमाहियों का रेकार्ड तोड़ दिया। वृद्धि दर अब सिर्फ साढ़े चार फीसद बची है। यानी इस साल की पहली छमाही का आंकड़ा पौने पांच फीसद बैठ रहा है। हाल फिलहाल देश की माली हालत के सुधरने के आसार भी नहीं दिख रहे। इसीलिए देश की जीडीपी का अनुमान लगाने वाली तमाम एजंसियां इस साल पांच सवा पांच फीसद से ज्यादा का अंदाजा नहीं लगा रही हैं। बेशक ये आंकड़े चिंताजनक हैं।

वैसे वृद्धि दर में उतार-चढ़ाव कोई अपूर्व घटना नहीं है। स्थिति को सामान्य बताने वाले विशेषज्ञ इस हालत को चक्रीय घटना बताते हुए दिलासा दे रहे हैं। लेकिन आमतौर पर यह नहीं बताया जा पा रहा है कि इस दुश्चक्र से बचाव कैसे किया जाए? जो कुछ किया जा रहा है, वह नाकाफी साबित हुआ है। बेशक अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव आते जाते रहते हैं, लेकिन चिंता तब जरूर होती है जब वृद्धि दर में गिरावट लंबे समय तक बनी रहे। तब चिंता और भी बढ़ती है जब कोई उपाय, हालात को संभाल ना पा रहा हो। पिछले तीन-चार महीने से अर्थव्यवस्था को संभालने के भारी-भरकम सरकारी खर्च वाले उपाय किए गए। उद्योग जगत और बैंकों को बड़ी-बड़ी आर्थिक मदद दी गई। इसका तर्क यह कि औद्योगिक उत्पादन घटने की खबरें कई तिमाहियों से बढ़ रही थीं। इसलिए राहत पैकेज उसी क्षेत्र को दिए गए जिन्हें उत्पादन बढ़ाने वाला माना जाता है। उद्योग जगत की मदद के लिए कॉरपोरेट कर में भारी कटौती की गई। सोचा और कहा गया कि कॉरपोरेट कर कम करने से उद्योग जगत के पास पैसा बचेगा और वह पैसा औद्योगिक गतिविधियां बढ़ाने में काम आएगा। रियल एस्टेट क्षेत्र को भी पैकेज दिया गया। इसका मकसद अधूरी पड़ी आवास परियोजनाएं पूरी करना है। मौद्रिक उपाय भी करके देख लिए गए। इसी तरह अलग-अलग क्षेत्रों को मदद देकर उद्योग क्षेत्र में फिर से जान फूंकने की कोशिश की गई। इसके बाद भी अगर बात उतनी बनती दिख नहीं रही है तो सवाल उठना लाजिमी है कि क्या सही क्षेत्रों पर ध्यान लगाया गया?

गौरतलब है कि अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों की उत्पादक गतिविधियां तय करती हैं। ये तीन क्षेत्र हैं विनिर्माण, सेवा और कृषि। गौर करें तो पिछले तीन महीनों में विनिर्माण और सेवा क्षेत्र यानी कॉरपोरेट को ऊपर उठाने की कोशिशें ज्यादा हुईं। लेकिन पिछले तीन महीने के उपायों में कृषि क्षेत्र पर उतना ध्यान नहीं गया। इसलिए इस पहलू की चर्चा होनी जरूरी है।

इस बात से कोई इनकार नहीं करता कि देश में इस समय समस्या कम औद्योगिक उत्पादन की है। इसका सीधा-सा मतलब है कि उत्पाद की मांग घटी है। अगर मांग होती और फिर भी उत्पादन कम हो रहा होता तो इस समय महंगाई पिछले सारे रेकॉर्ड तोड़ चुकी होती। अर्थशास्त्र के बड़े विशेषज्ञ चाहें तो निष्कर्ष निकाल कर बता सकते हैं कि इस समय देश में उत्पादन नहीं बल्कि उत्पाद की मांग घट रही है। हालांकि कुछ गैरसरकारी विशेषज्ञ बता भी रहे हैं कि समस्या उपभोक्ता के कमजोर पड़ जाने की है। इसे वे क्रय-शक्ति का कम होना कहते हैं। इस अवस्था को आर्थिक सुस्ती कहा जाता है और आम बोलचाल की भाषा में कहा जाने लगता है कि लोगों की जेब में पैसा नहीं है। बाजार की भाषा में यह बाजार में ग्राहकी का न होना है। अगर मौजूदा हालात को ग्राहक या उपभोक्ताओं की माली हालत के नजरिए से देखें तो आज की आर्थिक सुस्ती से निपटने के लिए उपभोक्ताओं को मजबूत करने के उपाय होने चाहिए। फिर सवाल यह उठेगा कि ज्यादा से ज्यादा ग्राहकों यानी अधिक से अधिक उपभोक्ताओं को मजबूत कैसे किया जाए?

अपना देश एक सौ पैंतीस करोड़ आबादी का देश है। देश के औसत नागरिक पर सूई टिकाना चाहें तो वह निम्न मध्य आय वर्ग पर जाकर टिकेगी, यानी मध्यवर्ग से नीचे का वर्ग। इस वर्ग की रिहाइश का पता करने निकलें तो ऐसे सबसे ज्यादा उपभोक्ता गांव में रहते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि देश की आधी से ज्यादा आबादी गांव में बसती है। इसीलिए औद्योगिक उत्पाद का एक बहुत बड़ा उपभोक्ता

ग्रामीण भारत है। लगता है कि सरकारी अर्थशास्त्रियों का ध्यान अभी इन उपभोक्ताओं पर गया नहीं है।

ग्रामीण भारत से काफी समय से संकेत मिल रहे थे कि वहां का उपभोक्ता आर्थिक रूप से कमजोर हो रहा है। ज्यादा दूर की नहीं, तीन महीने पहले की ही बात है। रिपोर्ट आई थी कि गांवों में रोजमर्रा की जरूरत की चीजों की खपत घट रही है। इस वजह से रोजमर्रा का सामान बनाने वाली कंपनियों के कारोबार में भी मंदी आ रही है। कारण यह कि एफएमसीजी क्षेत्र में बना माल शहरों में जितना खपता है, उससे डेढ़ गुना ज्यादा खपत गांवों में होती है। इसलिए साबुन, तेल, बिस्कुट, बाल्टी जैसे उत्पाद बनाने वाली कंपनियों की बिक्री पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भारी असर पड़ा। इस तरह गांव, किसान या कृषि क्षेत्र की बदहाली सीधे-सीधे कॉरपोरेट से जुड़ी मानी जानी चाहिए। कॉरपोरेट को कर में छूट देकर उसे कितनी भी राहत पहुंचा ली जाए आखिर में बात वहीं जाकर अटकेगी कि कॉरपोरेट के माल बिकने की स्थितियां खराब तो नहीं हो रहीं हैं। यानी कारपोरेट की सेहत तब ज्यादा सुधरेगी जब ग्रामीणों की जेब में पैसा होगा।

बहुत से अर्थशास्त्री अच्छी तरह से समझते हैं कि किसान की जेब में पैसा होने का एक संकेतक कृषि विकास दर का बढ़ना है। लेकिन इन दिनों जब भी जीडीपी के नए आंकड़े आए, तब सबका ध्यान सिर्फ औद्योगिक विकास दर की कमी पर खींचा गया। ऑटोमोबाइल, टेक्सटाइल, सीमेंट, रियल एस्टेट आदि क्षेत्रों में गिरावट आई और उन्हीं पर चर्चा होती रही। लेकिन कृषि क्षेत्र पर किसी का ध्यान नहीं गया।

कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर पिछले साल की दूसरी तिमाही के 4.9 फीसद से घट कर इस साल की दूसरी तिमाही में सिर्फ 2.1 फीसद रह गई। यह एक बहुत बड़ा सूचक है कि इस समय गरीबों और गांव वालों की जेब की क्या हालत है।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि कभी हम कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहते थे। छह दशक पहले जीडीपी में कृषि का योगदान 56.5 फीसद था। लेकिन जीडीपी में उद्योग क्षेत्र का योगदान बढ़ता गया और कृषि का योगदान घटता गया। हालांकि कृषि का योगदान कम दिखने का कारण भी ढूंढ़ा जाना चाहिए। विश्लेषण यह हो सकता है कि जीडीपी का आकलन तीनों क्षेत्रों के उत्पादित माल के दाम से बनता है और ये एक उजागर हकीकत है कि कृषि उत्पाद का दाम उस हिसाब से नहीं बढ़ा जिस हिसाब से उद्योग के माल के दाम बढ़े। इस तथ्य पर भी गौर होना चाहिए कि तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं की दौड़ में उद्योग क्षेत्र वृद्धि दर के लिए ज्यादा मुनाफे का था। इसलिए कृषि कि अनदेखी कभी देश में मुख्य चर्चा का विषय बनी भी नहीं। कृषि का योगदान भले ही कम हो, लेकिन आबादी के लिहाज से वह देश का सबसे बड़ा व्यवसाय आज भी है। देश की आधी आबादी कृषि से रोजगार पाती है। पर अब कृषि क्षेत्र उसमें लगे व्यक्तियों को अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरा करने लायक मुनाफा भी नहीं दे पा रहा है। जाहिर है, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बदहाली का असर देश के बाजार पर पड़ने लगा है। ऐसे में देश की आबादी के सबसे बड़े हिस्से की जेब में पैसे पहुंचाए बिना थमे हुए बाजारों का चक्का दोबारा चलाना बड़ा मुश्किल होगा।

पोंआर पर तितली

हेमंत कुमार पारीक

दुनिया मेरे आगे

पोंआर को एक अनुपयोगी पौधा भी कह सकते हैं। पता नहीं कब उसमें आई फलियां सूख कर झड़ती हैं और उनके बीज बिखर जाते हैं। बारिश आते ही गांव में यह पौधा चारों तरफ लहराने लगता था। पीले-पीले फूल होते हैं उसके और एक खास तरह की गंध आती है। उस वक्त पीले-पीले फूलों पर न जाने कहां से छोटे आकार की पीली तितलियां मंडराने लगती थीं। यहां से वहां तक एक फसल-सी खड़ी दिखती थी। 'न काहू से दोस्ती और न काहू से बैर' वाली उक्ति चरित्रार्थ करता था वह पौधा। उसे कोई जानवर भी नहीं खाता था। सरसों की तरह पीले-पीले फूलों वाला वह पौधा यहां से वहां तक नजर आने लगता था। एक खास गंध होने के बावजूद न तो उसमें गुलाब-सी आकर्षक महक होती है और न कांटे।

पिछले कुछ सालों से कहीं दिखाई नहीं पड़ी, जबकि एक समय गांव में चारों तरफ उसका साम्राज्य हुआ करता था और पीली तितलियों को पकड़ने बच्चों का झुंड यहां से वहां तक उनके बीच मटरगश्ती करता नजर आता था। इस बार बारिश की अवधि कुछ ज्यादा ही लंबी हो गई थी। कई राज्यों में यह बाढ़ के प्रकोप का कारण रही। कभी मेरे शहर में पोंआर की उपस्थिति नगण्य थी। पर इस वर्ष कहीं-कहीं फसल जैसी दिखाई पड़ी, लेकिन वे पीली तितलियां कहीं नजर नहीं आईं, जिन्हें पोंआर के पीले फूल आकर्षित करते हैं। वरना बारिश के दिनों दीगर रंग की तितलियां भी दिखती थीं। अलग-अलग तरह की खूबसूरती लिए हुए। लेकिन पोंआर के पीले फूलों पर तो पीली तितली ही मिलती-जुलती लगती है। कभी-कभी हरे रंग की भी नजर आती है। बगीचों में तो जैसे इसके भिन्न प्रकार दिख जाते हैं। इस वर्ष थोड़ी मात्रा में सही, लहराती पोंआर को शहर में देख मैं खुश तो हुआ था, लेकिन पीली तितलियों की अनुपस्थिति खल गई। सूखे शंट पोंआर के पौधा पर पीले फूल तो थे।

आज की दौड़ती-भागती दुनिया में जहां लोगों को मोबाइल, ट्विटर, इंस्टाग्राम और सोशल मीडिया में बने रहने के कारण फुर्सत नहीं है। मोबाइल के होते बेटा अपने पिता को नजदीक से नहीं जान पा रहा और पत्नी पति को। तो फिर किसी का ध्यान क्यों इन बेकार की बातों पर जाए? पर विषय गंभीर है। इस तरह तितलियों का ओझल हो जाना किसी बड़े संकट की चेतावनी जरूर है। अब ये छोटे-छोटे कीट-पतंगे कहीं नजर नहीं आते, वरना फूलों पर भ्रमण करने वाली तितली घर और बाहर की शोभा बढ़ा दिया करती थी।

शहर के पार्कों में गुड़हल की एक कलम के लिए मैं भटकता रहा। कुछ विशेष था गुड़हल का वह फूल। वैसे तो गुड़हल की कई किस्में होती हैं, पर सफेद लाल रंग के गुड़हल के फूल ने मुझे आकर्षित किया था। पता चला कि हाईब्रिड प्रजाति का होता है। सरकारी और निजी नर्सरी के चक्कर काटे, पर कहीं नहीं दिखा। उसे खोजते समय बागों में तितली की अनुपस्थिति खल गई। खासतौर से उस एकरंगी तितली की, वरना बारिश का मौसम उनका ही होता है। अंडे से लार्वा, लार्वा से प्यूपा और प्यूपा से तितली। कई बार दिखे हैं पत्तों के नीचे की तरफ चिपके लार्वा सफेद-सफेद खोल में। यह कुदरत का अनोखा करिश्मा है, जिसे समझना बहुत मुश्किल है। किस प्रकार खोल के अंदर बंद इल्ली तितली का रूप धारण करती है। और पता ही नहीं चलता कि कब नन्ही-सी तितली खोल तोड़ कर बाहर निकल जाती है। उसकी बदलती अवस्थाएं आचर्श्य चकित कर देती हैं।

बारिश इन सब जीवों के लिए प्रकृति का वरदान होती है। तरह-तरह के कीट-पतंगे देखने को मिलते हैं और वे पतंगे भी, जिनका जीवनकाल मात्र कुछ पलों का होता है। रोशनी के आसपास मंडराते हैं। अचानक बारिश में बहुसंख्य दिखते हैं। रात के समय स्ट्रीट लाइट के आसपास मंडराते नजर आते हैं और अगले दिन सड़कों पर बिखर जाते हैं, फूलों की पंखुड़ियों की तरह। कहीं उनके पंख पड़े होते हैं तो कहीं बाकी शरीर! कभी-कभी पंखों वाले चींटे भी दिखते हैं।

समझ नहीं आता। शायद हमारी बुद्धि से परे है कि ये छोटे-छोटे जीव अल्पकाल के लिए क्यों पैदा होते हैं! इनके पैदा होने का क्या प्रयोजन है? शायद एक चक्र है जो हमारे पर्यावरण के लिए कहीं जरूरी भी है। हमें तो इनका अल्पकाल के लिए पैदा होना निरर्थक जान पड़ता है। इसी संबंध में एक शोधपत्र में कहा गया था कि मधुमक्खियों की प्रजातियां समाप्त हो गईं तो यह मानव का आखिरी दिन होगा। दुनिया से अनेक जीव-जंतु गायब हो जाएंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा जीवन भी कहीं न कहीं इनके अस्तित्व से जुड़ा है। हो सकता है कि पोंआर के इन पौधों पर मंडराने वाली पीली-पीली तितलियां स्वच्छ और स्वस्थ्य पर्यावरण का सूचक थीं। अभी पोंआर के पौधे तो दिख रहे हैं पर वे पीली तितलियां कहीं गायब हो गईं हैं। यह चिंता का विषय है!

मंशा और सवाल

भारत, जो कभी आंतरिक शांति और सौहार्द के लिए जाना था, ऐसा लगता है कि उस पर आज कुछ बुरी शक्तियां हावी हो चुकी हैं। 1947 में विभाजन के दौरान धर्म विशेष के आधार पर पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान का गठन हुआ। जबकि भारतीय संविधान सभा में सभी धर्मों और वर्गों को समानता देने की पुरजोर वकालत की गई और अनुच्छेद-14 में सभी लोगों को समानता का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया और धार्मिक अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए विशिष्ट उपबंध किए गए। यही कारण है कि हमारा संविधान विश्व का सबसे सुंदर संविधान है।

पिछले कुछ वर्षों से सरकार ने अपनी नाकामी को छिपाने के लिए अनेक प्रयत्न किए, चाहे उसमें लव-जिहाद, घर वापसी, नोटबंदी, करों में वृद्धि, अनुच्छेद 370, एनआरसी हो या सीएए। सरकार किसी देश को विकसित करने वाले तथ्यों पर ध्यान नहीं देना चाहती, जिसका परिणाम हमें बेरोजगारी, गरीबी, मंहगाई, शिक्षा का अभाव आदि कारकों के रूप में देखने को मिलता है। सरकार की मंशा देश में खुशहाली और शांति स्थापित करने के बजाय देश में अस्थिरता फैलाने की लगती है, क्योंकि आमजन के मन में द्वेष फैलाना, बेरोजगारी में वृद्धि होना, जीडीपी का दिनोंदिन गिरना, एडीबी द्वारा विकास दर कम करना और सैकड़ों औद्योगिक उपक्रमों का बंद होना सरकार की मंशा और नाकामी को साफ जाहिर करता है।

● *मोहम्मद शायान, विधि छात्र, कैराना*

बहुमत का हथियार

भारत का आदर्श वाक्य- 'वसुधैव कुटुम्बकम', यानी पूरी दुनिया हमारा परिवार है। लेकिन अब अफगानिस्तान, बांग्लादेश, पाकिस्तान के अल्पसंख्यक, मुसलिम को छोड़ कर आसानी से भारत की नागरिकता पा सकते हैं। एनडीए के तर्क हैं कि इन तीनों देशों में मुसलिम अल्पसंख्यक नहीं, बहुसंख्यक हैं। इसलिए उनका प्रवेश भारत में औरों की अपेक्षा सुगमता से नहीं हो सकता। अगर एनडीए को मुसलिम छोड़ कर अन्य अल्पसंख्यकों से इतना प्रेम है, तब पूरे विश्व के लोग क्यों नहीं यहां की नागरिकता हासिल कर सकते हैं। दरअसल, इस मसले पर कई बड़े नेताओं के अतीत को छिपाने की कोशिश की गई है। लेकिन इससे ज्यादा उम्मीद भी क्या की जा सकती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कट्टर हिंदूवाद का चरित्र हमारे देश का नहीं रहा है, लेकिन बहुमत का दुरुपयोग कर सरकार संयुक्त राष्ट्र का खयाल करना भी जरूरी नहीं समझ रही है। संविधान की प्रस्तावना की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। एक और अफसोसजनक स्थिति यह सामने आई कि इस बिल को लोकसभा और राज्यसभा में पारित होने में जिस तरह जदयू और लोजपा जैसे कुछ दलों का समर्थन मिला, उससे इन दलों के धर्मनिरपेक्षता का नकाब भी उतर गया। भाजपा अपना धार्मिक कार्ड खेलने में जरूर सफल हुई, लेकिन इसकी कीमत जेडीयू, लोजपा जैसी पार्टियों को चुकानी पड़ेगी। रोजगार, शिक्षा, विकास भले ही पीछे रह जाएं, लेकिन धार्मिक राजनीतिक फले-फूले, इससे देश का किस तरह हित होगा।

● *प्रसिद्ध यादव, बाबूचक, पटना*

विलय समाधान नहीं

बैंकों का बढ़ता एनपीए गंभीर चिंता का विषय है। इस समस्या से निपटने के लिए के लिए सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में पूंजी डाल कर थक चुकी है। अब कमजोर बैंकों का दूसरे बड़े मजबूत बैंकों में विलय किया जा रहा है। वित्त मंत्रालय के अनुसार बैंकों के विलय से बैंकों की दक्षता और संचालन में सुधार होगा। जबकि हमारे देश में बैंकों के विलय का पुराना रिकॉर्ड ठीक नहीं रहा हैं। न्यू बैंक ऑफ इंडिया और पंजाब नेशनल बैंक का विलय, ग्लोबल ट्रस्ट बैंक और ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स का विलय, भारतीय स्टेट बैंक के सहयोगी बैंकों के विलय का उदाहरण सामने है। विजया बैंक और देना बैंक का बैंक ऑफ बड़ौदा में विलय कर दिया है। दरअसल, राष्ट्रीयकृत बैंकों के विलय से कॉरपोरेट घरानों और पूंजीपतियों की लूट का रास्ता और आसान होता जा रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन ने बैंकों के गठजोड़ और विलय करने से पहले विलय किए जाने वाले बैंकों की बैलेंसशीट को स्वच्छ (एनपीए मुक्त) करने की सलाह दी थी। यह हकीकत किसी से छिपी नहीं है कि बैंकों का विलय करने से फंसे कर्ज की वसूली नहीं हो पाएगी और बैंक प्रबंधन का पूरा ध्यान विलय के मुद्दे पर चला जाएगा। स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में पांच सहयोगी बैंकों के विलय से कोई चमत्कार नहीं हुआ, बल्कि दो सौ साल में पहली बार स्टेट बैंक को घाटा हुआ था। सरकार को इसमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

● *दीपक गिरकर, इंदौर*

असुविधा की सड़क

संपादकीय 'सफर का तकाजा' (13 दिसंबर) पढ़ा। सड़क पर यातायात के बारे में जरूरी विश्लेषण किया गया है। तेजी से बढ़ता ट्रैफिक जाम आज हर तरफ एक बड़ी समस्या बनता जा रहा है। घर से बाहर निकलने से पहले सड़कों पर लगी लंबी-लंबी गाड़ियों के जाम से जूझने को मजबूर होना पड़ता है। काम तो थोड़ा ही रहता है, मगर ट्रैफिक की वजह से काफी समय खराब हो जाता है। शहरों में तो हालात बदतर होते जा रहे हैं। लगातार बढ़ते वाहन मगर पार्किंग की समस्या ने सड़कों को जाम में बदल दिया है। निश्चित ही अब जाम से छुटकारा पाने के प्रयास करने होंगे।

● *साजिद अली, चंदन नगर, इंदौर*

पाठ्यचर्या में नैतिक शिक्षा

उत्तर प्रदेश सरकार ने प्राथमिक स्तर पर नैतिक शिक्षा को पाठ्यचर्या में शामिल करने का फैसला किया है। आज बच्चे परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों से विमुख होतेजा रहे हैं। आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में व्यक्ति स्वयं के अलावा दूसरों के बारे सोच ही नहीं पा रहा है। सिर्फ अपने लिए जीना उसका मकसद हो गया है। उसके लिए दुनिया, देश और समाज का कोई मतलब नहीं रह गया है। गांधीजी ने जब बुनियादी शिक्षा की नींव रखी तो उसका मुख्य उद्देश्य बालकों में शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करना था। इसलिए बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में नैतिक शिक्षा की अहम भूमिका होगी।

● *शैलेश मिश्र, वाराणसी*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

www.readwhere.com